10
सुदर्शनोदय महाकाव्य में सन्निहित जैन दर्शन के तत्त्व

सीमा सिंह
शोधच्छात्रा, संस्कृत अनुशासन,
मानविकी विद्यापीठ, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

प्रो. कौशल्या
आईसीसी आर चेयर, भारतीय अध्ययन (संस्कृत),
विजया कुसुमा सुरबाया विश्वविद्यालय, इंडोनेशिया

सारांश

आचार्यज्ञानसागरजीमहाराजउन्नीसवींशताब्दीकेउत्तरार्द्धएवंबीसवींशताब्दीकेपूर्वार्द्धमेंदिगम्बरजैनपरम्पराकेविद्वान्आचार्य, साधकएवंसंस्कृतकेप्रख्यातमहाकाव्यकारकेरूपमेंप्रतिष्ठितरहे।उन्होंने संस्कृत और हिन्दी में अनेक ग्रन्थों की रचना की। उनके प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों में *जयोदय, सुदर्शनोदय, वीरोदय* और *भद्रोदय* हैं, जिनमें *सुदर्शनोदय महाकाव्य* का विशेष महत्त्व है। इसमें सुदर्शन सेठ के चरित्र के माध्यम से जैन धर्म, दर्शन और साधना के विविध पक्ष प्रस्तुत हुए हैं। नौ सर्गों में विभक्त इस महाकाव्य में आत्मा की नित्यता, कर्म-बन्ध, कर्म-निर्जरा, वीतरागता, समत्व, अनासक्ति और मोक्ष जैसे जैन दर्शन के प्रमुख दार्शनिक तत्त्व कथानक में समाहित हैं। सुदर्शन का जीवन धैर्य, संयम और आत्मबल का परिचय देता है। विषम परिस्थितियों में भी उसका समभाव बनाए रखना जैन जीवन-दृष्टि को स्पष्ट करता है। उसका चरित्र सांसारिक आकर्षणों से ऊपर उठकर आत्मकल्याण की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में सुदर्शनोदय महाकाव्य के उद्धरणों के आलोक में उसमें निहित जैन दर्शन के प्रमुख तत्त्वों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

कूटशब्द

सुदर्शनोदय महाकाव्य, जैन दर्शन, आत्मतत्त्व, कर्म-सिद्धान्त, कर्म-निर्जरा, समत्व-बोध, अनासक्ति, केवलज्ञान, मोक्ष।

भूमिका

संस्कृत-जैन वाङ्मय की महाकाव्य-परम्परा में *सुदर्शनोदय महाकाव्य* का एक विशेष स्थान है। इसमें काव्य-सौन्दर्य के साथ जैन दर्शन के सिद्धान्त भी मिलते हैं। इसके रचयिता आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज की गणना दिगम्बर जैन परम्परा के विद्वान आचार्य और साधकों की जाती है। उनकी रचनाओं में साहित्य के साथ दर्शन, ज्योतिष, खगोल विद्या, राजनितिक विचार, विज्ञान इत्यादि

©Indira Gandhi National Open University

विषयों का भी प्रतिपादन मिलता है। *सुदर्शनोदय महाकाव्य* भी ऐसा ही महनीय ग्रन्थ है, जिसमें काव्य के तत्त्व तो समाहित ही हैं, साथ ही अन्यान्य विषय भी सन्निहित हैं। इसमें कथानक के माध्यम से जैन दर्शन के सिद्धान्तों का भी प्रभूत प्रतिपादन किया गया है। नौ सर्गों में उपनिबद्ध *सुदर्शनोदय महाकाव्य* में मुख्यरूप से चम्पानगरी के श्रेष्ठीपुत्र सुदर्शन के जीवन-चरित्र का मनोरम वर्णन मिलता है। साथ ही इसमें कथानक के माध्यम से आत्मा, कर्म, संसार-बन्धन और मोक्ष जैसे दार्शनिक विषयों पर भी गंभीरतम दृष्टिपात किया गया हैं। कथा मुख्यतः सुदर्शन के चरित्र पर केन्द्रित है। इसके साथ ही जैन दर्शन की मूल मान्यताएँ भी समागत हैं। ज्ञानसागर जी ने इन सिद्धान्तों को केवल उपदेश के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है, अपितु उन्हें पात्रों के आचरण, संवादों और जीवन की घटनाओं से जोड़ा है। इससे कथा और दर्शन का सम्बन्ध सहज रूप में स्पष्ट होता है।

महाकाव्य में आत्मा की नित्यता और कर्मसिद्धान्त का विशेष महत्त्व है। राजा द्वारा अन्यायपूर्वक दण्ड दिए जाने पर भी सुदर्शन क्रोध नहीं करता है। वह अपने कर्मों को ही अपने सुख-दुःख का कारण मानता है -

"को दोषस्तव कर्मणो मम स वैसर्वे जना यद्वशे।
श्रीभाजा भवतोचितं च कृतमस्त्येतज्जगद्वे तवे,
दण्डं चेदपराधिने न नृपतिर्द्धातिस्थितिः का भवेत्[1]॥"

इस पद्य में कर्मफल के प्रति सुदर्शन की दृष्टि प्रकट होती है। जैन दर्शन के अनुसार जीव अपने कर्मों का कर्ता और भोक्ता है। उसके सुख-दुःख का सम्बन्ध उसके कर्मों से है। यही विचार सुदर्शन को विपरीत परिस्थितियों में भी समभाव बनाए रखने की प्रेरणा देता है। सुदर्शनोदय के कर्ता ज्ञानसागर जी महाराज ने समत्व के महत्त्व को भी एक अन्य पद्य में विधिवत् स्पष्ट किया है–

"विज्ञो न सम्पत्तिषु हर्षमेतिविपत्सु शोकं च मनागथेति।
दिनानि अत्येति तटस्थ एवस्वशक्तितोऽसौ कृततीर्थसेवः[2]॥"

प्रस्तुत पद्य में ज्ञानी व्यक्ति के आचरण का चित्रण हुआ है। वह सुख में अत्यधिक हर्षित नहीं होता और दुःख में कभी विचलित नहीं होता। जैन दर्शन में राग और द्वेष को कर्मबन्ध का कारण माना गया है। समभाव इनसे मुक्त होने की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार सुदर्शन का आचरण आत्मसंयम और समत्व का परिचय देता है। संसार की निस्सारता और वास्तविक सुख की

[1]सुदर्शनोदय महाकाव्य, 8/14

[2]सुदर्शनोदय महाकाव्य, 8/19

Volume 5, Issue 2, 2026, p 100-111, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

खोज का प्रसङ्ग भी महाकाव्य में मिलता है। मोह से उत्पन्न भ्रान्ति को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है–

"मोहादहो पश्यति बाह्यवस्तुन्यङ्गीति सौख्यं गुणमात्मनस्तु।
भ्रमाद्यथाऽकाशगतेन्द्रिबिम्बमङ्गीकरोति प्रतिवारिडिम्बः[3]॥"

इसका भाव यह है कि सुख आत्मा का गुण है, फिर भी जीव मोहवश उसे बाहरी वस्तुओं में खोजता है। यह दृष्टि उसे वास्तविक सुख से दूर रखती है। जैन दर्शन में मोह को बन्धन का प्रमुख कारण माना गया है। मोह का क्षय होने पर ही आत्मस्वरूप का बोध सम्भव होता है। वैराग्य और मोक्ष की भावना से उपेत एक अन्य पद्य भी द्रष्टव्य है–

"धरा पुरान्यैररीकृता वाऽसकाविदानीं भवता धृता वा।
स्वदारसन्तोषवतो न भोग्याममाधुना निर्वृतिरेव योग्या[4]॥"

यहाँ सांसारिक भोगों से विरक्ति का भाव प्रकट होता है। सुदर्शन के लिए अब भोगों की अपेक्षा निर्वृत्ति अधिक महत्त्वपूर्ण है। जैन दर्शन में मोक्ष को आत्मा की परम अवस्था माना गया है। इस दृष्टि से यह उद्धरण वैराग्य और आत्मकल्याण की भावना को सामने लाता है।

इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि *सुदर्शनोदय महाकाव्य* में जैन दर्शन के सिद्धान्त कथा के साथ जुड़े हुए हैं। आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने सुदर्शन के चरित्र के माध्यम से आत्मा, कर्म, समत्व, वैराग्य और मोक्ष जैसे विषयों को प्रस्तुत किया है। इस महाकाव्य में साहित्य और दर्शन का अद्भुत समन्वय दिखालाई पड़ता देता है। सुदर्शनोदय महाकाव्य के कथानक में सन्निहित इन्हीं दार्शनिक तत्त्वों को मूल पद्यों के आधार पर प्रस्तुत करना ही इस शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य है, जिसका विवेचन अधोलिखित विन्दुओं में किया गया है -

1. आत्मतत्त्व का निरूपण

सुदर्शनोदय महाकाव्य में आत्मतत्त्व का विशिष्टता के साथ प्रतिपादन मिलता है। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा नित्य, स्वतन्त्र और चेतन है। वह शरीर से भिन्न है। सुदर्शन का जीवन भी इसी विचार को सामने लाता है। उसका जीवनदर्शन हमें देहाभिमान से आत्मबोध और कर्मबन्धन से

[3]सुदर्शनोदय महाकाव्य, 8/21

[4]सुदर्शनोदय महाकाव्य, 8/22

Volume 5, Issue 2, 2026, p 100-111, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

कैवल्य की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है। जैन दर्शन में आत्मा को नित्य माना गया है। उसका जन्म और विनाश शरीर की तरह नहीं होता है। देह, इन्द्रियाँ और मन उससे भिन्न हैं। नवम सर्ग में सुदर्शन को मृत्युदण्ड, अपमान और अनेक उपसर्गों का सामना करना पड़ता है। तथापि वह अपने चित्त को विचलित नहीं होने देता है। ज्ञानसागर जी ने आत्मतत्त्व को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है–

"देहं वदेत्स्वं बहिरात्मनामाऽन्तरात्मतामेति विवेकधामा।
विभिद्य देहात्परमात्मतत्त्वं प्राप्नोति सद्योऽस्तकलङ्कसत्त्वम्[5]॥"

इस पद्य में बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा की अवधारणा का विवेचन किया गया है। जो व्यक्ति देह को ही अपनी आत्मा मानता है, वह बहिरात्मा कहलाता है। इसके विपरीत, विवेकवान् पुरुष शरीर से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा का बोध करता है और अन्तरात्मा की स्थिति को प्राप्त होता है। जब वह देह से भिन्न निष्कलंक परमात्मतत्त्व का ध्यान करता है, तब वह आत्मा की शुद्ध अवस्था को प्राप्त कर परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार करता है। इस प्रकार प्रस्तुत पद्य में आत्मा की तीन अवस्थाओं के माध्यम से आत्मतत्त्व की अवधारणा स्पष्ट होती है। सुदर्शन के जीवन-प्रसंगों के दार्शनिक विश्लेषण में यह विवेचन आत्मा की शारीरिक पहचान से परे उसके चैतन्यस्वरूप को समझने का आधार प्रदान करता है।

सुदर्शन के आत्मचिन्तन का एक उदाहरण उस समय मिलता है, जब निर्दोष होने पर भी उसे दण्ड दिया जाता है। वह राजा, समाज या परिस्थिति को दोष देने की अपेक्षा सुख-दुःख को अपने कर्मों के परिणाम के रूप में देखता है। यह दृष्टि जैन दर्शन के कर्मसिद्धान्त से सम्बद्ध है। आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने इस विचार को निम्नलिखित श्लोक में अभिव्यक्त किया है–

"सुखं च दुःखं जगतीह जन्तोः स्वकर्मयोगाद् दुरितार्थमन्तो।
मिष्टं सितास्वादन आस्यमस्तु तिक्तायते यन्मरिचाशिनस्तु[6]॥"

इस श्लोक में सुख-दुःख की प्राप्ति को जीव के अपने कर्मों से सम्बद्ध बताया गया है। जिस प्रकार मिश्री का स्वाद लेने पर मुख में मिठास उत्पन्न होती है और मिर्च खाने पर जलन का अनुभव होता है, उसी प्रकार जीव को अपने कर्मों के अनुरूप सुख-दुःख प्राप्त होते हैं। इस दृष्टिकोण से सुदर्शन की विपरीत परिस्थितियों में धैर्यपूर्वक बने रहने की प्रवृत्ति को समझा जा सकता है। वह कठिनाइयों को केवल बाहरी परिस्थितियों के परिणाम के रूप में न देखकर कर्मसिद्धान्त के आलोक में देखता है। इस प्रकार यह प्रसंग जैन दर्शन में कर्मफल की अवधारणा और उसके प्रति सुदर्शन की दृष्टि को स्पष्ट करता है।

[5]सुदर्शनोदय महाकाव्य, 9/72

[6]सुदर्शनोदय महाकाव्य, 8/18

©Indira Gandhi National Open University

इस महाकाव्य में शरीर की प्रकृति और उसके प्रति विवेकपूर्ण दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है। आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने इस विचार को निम्नलिखित पद्य में अभिव्यक्त किया है -

"शरीरमेतन्मलमूत्रकुण्डं यत्पूतिमांसास्थिवसादिङ्गुण्डम्।
उपर्युपान्तं ननु चर्मणा तु विचारहीनाय परं विभातु[7]॥"

इस पद्य में शरीर की बाह्य सुन्दरता और उसकी वास्तविक संरचना के बीच अन्तर को स्पष्ट किया गया है। ज्ञानसागर जी के अनुसार, जो व्यक्ति शरीर की प्रकृति पर विचार नहीं करता, वही उसके बाह्य रूप से प्रभावित होकर उसे सुन्दर मानता है। इस प्रकार यह पद्य शरीर के प्रति आकर्षण और मोह से बचने तथा विवेकपूर्ण दृष्टि अपनाने की प्रेरणा देता है। जैन दर्शन के वैराग्यपरक चिन्तन के सन्दर्भ में यह विचार महत्त्वपूर्ण है और आत्मतत्त्व की समझ की दिशा में सहायक बनता है।महाकाव्य के नवम सर्ग में सुदर्शन की ध्यानमग्न अवस्था का वर्णन मिलता है, जिसमें आत्मचिन्तन, क्षपकश्रेणी और केवलज्ञान का उल्लेख है। यह प्रसङ्ग सुदर्शन की आध्यात्मिक यात्रा की परिणति को सामने लाता है। अष्टम सर्ग में दिखाई देने वाला आत्मचिन्तन नवम सर्ग में उच्च अवस्था तक पहुँचता है –

"आत्मन्येवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं चिन्तयतोऽस्य धीमतः।

न जातुचिदभूलक्ष्यंस्तत्कृतोपद्रवे पुनः[8]॥"

इस प्रकार *सुदर्शनोदय महाकाव्य* में आत्मतत्त्व का विवेचन सुदर्शन के जीवन-प्रसंगों के माध्यम से हुआ है। शरीर और आत्मा का भेद, कर्मफल के प्रति उसकी दृष्टि तथा केवलज्ञान की प्राप्ति इस विवेचन के प्रमुख पक्ष हैं। सुदर्शन का चरित्र जैन दर्शन में आत्मबोध और आत्मशुद्धि के महत्त्व को स्पष्ट करता है।

2. कर्म-सिद्धान्त का प्रतिपादन

सुदर्शनोदय महाकाव्य में कर्म-सिद्धान्त का विस्तार के साथ निरूपण मिलता है। जैन दर्शन के अनुसार राग, द्वेष और मोह कर्मबन्ध के प्रमुख कारण हैं। इनके प्रभाव से आत्मा कर्मों से बँधती है और संसार में जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है। सुदर्शन के जीवन की विभिन्न घटनाओं में इस मान्यता का स्पष्टतः परिचय मिलता है। विपरीत परिस्थितियों में भी उसका धैर्य और आत्मसंयम बना रहता है।

[7]सुदर्शनोदय महाकाव्य, 7/23
[8]सुदर्शनोदय महाकाव्य, 9/83

Volume 5, Issue 2, 2026, p 100-111, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

जैन दर्शन में जीव के भावों और उसकी प्रवृत्तियों को विशेष महत्त्व दिया गया है। सुदर्शन के जीवन में भी यह विचार सामने आता है। वह कठिन परिस्थितियों में धैर्य रखता है और अपने चित्त को विचलित नहीं होने देता है। सुख-दुःख के विषय में भी इस महाकाव्य में कर्मफल की मान्यता को स्थान मिला है। सुदर्शन को अपमान, संकट और मृत्युदण्ड जैसी परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है। फिर भी वह अपने दुःख का कारण केवल बाहरी परिस्थितियों को नहीं मानता। आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज लिखते हैं–**"सुखं च दुःखं जगतीह जन्तोः**[9]। इसमें जीव के कर्म और उनके फल का सम्बन्ध सामने आता है। जैन दर्शन के अनुसार जीव अपने कर्मों के फल का भोक्ता है। सुदर्शन की यह मान्यता उसे क्रोध और प्रतिशोध से दूर रखती है। वह विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य बनाए रखता है। उसके आचरण से कर्मफल के प्रति उसकी स्वीकारशीलता का परिचय मिलता है। जैन दर्शन में कर्मों से मुक्ति के लिए संवर और निर्जरा की प्रक्रिया का विशेष महत्त्व है। संवर से नए कर्मों का आगमन रुकता है, जबकि निर्जरा से पहले से बँधे कर्मों का क्षय होता है। तप, संयम और ध्यान इस साधना में सहायक हैं। सुदर्शन के जीवन में भी इन गुणों का परिचय मिलता है। आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने उसके धैर्य और आत्मनिष्ठा को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया हैं–

"हारे प्रहारेऽपि समानबुद्धिमूपैति सम्पद्विपदोः समुद्धि।

मृत्युं पुनर्जीवनमीक्षामाणः पृथ्वीतलेऽसौ जयतादकाणः[10]**॥"**

यहाँ तप और समाधि के माध्यम से कर्मनिर्जरा का भाव व्यक्त हुआ है। सुदर्शन उपसर्गों के बीच भी अपने मन को स्थिर रखता है। उसका व्यवहार बताता है कि जैन साधना में बाहरी परिस्थितियों की अपेक्षा आन्तरिक संयम और आत्मस्थिरता का अधिक महत्त्व है। सुदर्शन के जीवन में रानी का षड्यन्त्र, लोकनिन्दा, शूलदण्ड और व्यन्तरी-उपसर्ग जैसी घटनाएँ आती हैं। इन प्रसंगों के बीच भी वह अपने धैर्य और समभाव को बनाए रखता है। महाकाव्य में उपसर्गों को पूर्वकृत कर्मों के उदय से जोड़कर देखा गया है। आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज इस भाव को अभिव्यक्त करते हुए लिखा हैकि विपरीत परिस्थितियों के बीच ही आत्मशुद्धि का भाव दिखता है। सुदर्शन उपसर्गों से घबराने के स्थान पर अपने चित्त को स्थिर रखता है। उसका आचरण कठिन समय में भी साधना के प्रति निष्ठा बनाए रखने की प्रेरणा देता है। कर्मों के क्षय की प्रक्रिया अन्ततः केवलज्ञान और मोक्ष की ओर ले जाती है। नवम सर्ग के कथानक में सुदर्शन की आध्यात्मिक साधना की परिणति का वर्णन मिलता है जिसमें ध्यान, कर्मक्षय और केवलज्ञान की प्राप्ति का भाव निहित है। सुदर्शन की साधना आत्मशुद्धि से आगे बढ़कर उच्च आध्यात्मिक अवस्था तक पहुँचती है। जिससे ज्ञात होता है कि जैन दर्शन में कर्मों से मुक्ति के लिए आत्मसंयम और साधना को आवश्यक माना गया है।

[9]सुदर्शनोदय महाकाव्य, 8/18
[10]सुदर्शनोदय महाकाव्य, 9/4

Volume 5, Issue 2, 2026, p 100-111, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

इस प्रकार *सुदर्शनोदय महाकाव्य* में कर्म-सिद्धान्त का वर्णन सुदर्शन के जीवन-प्रसङ्गों के माध्यम से हुआ है। राग-द्वेष से कर्मबन्ध और तप, संयम तथा ध्यान से कर्मनिर्जरा का मार्ग प्रशस्त होता है। सुदर्शन का जीवन जैन दर्शन में कर्मफल, आत्मसंयम और आत्मशुद्धि की मान्यता को कथानक के माध्यम से प्रस्तुत करता है।

३. समत्व-बोध एवं अनासक्ति का सिद्धान्त

सुदर्शनोदय महाकाव्य में समत्व-बोध और अनासक्ति को जैन दर्शन के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। समत्व का अर्थ सुख-दुःख, मान-अपमान और लाभ-हानि की परिस्थितियों में मन को स्थिर रखना है। अनासक्ति का आशय सांसारिक विषयों के प्रति मोह और अत्यधिक लगाव से दूर रहना है। सुदर्शन के जीवन में इन दोनों भावों का परिचय मिलता है। कठिन परिस्थितियों में भी वह धैर्य और आत्मसंयम बनाए रखता है। अष्टम सर्ग में सम्पत्ति और विपत्ति के प्रति ज्ञानी व्यक्ति की दृष्टि का वर्णन करते हुए आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज लिखते हैं–

"विज्ञो न सम्पत्तिषु हर्षमेति विपत्सु शोकं च मनागथेति।
दिनानि अत्येति तटस्थ एव स्वशक्तितोऽसौ कृततीर्थसेवः[11]॥"

इन पंक्तियों में सुख और दुःख के प्रति समभाव रखने की प्रेरणा मिलती है। ज्ञानी व्यक्ति सम्पत्ति प्राप्त होने पर अत्यधिक हर्षित नहीं होता और विपत्ति आने पर भी शोक में डूबा नहीं रहता। वह दोनों परिस्थितियों में तटस्थ भाव बनाए रखते हुए अपने जीवन के दिन व्यतीत करता है। सुदर्शन का यह दृष्टिकोण जैन दर्शन में वर्णित समत्व-बोध की भावना को व्यक्त करता है।

मान-अपमान की परिस्थितियों में मन को स्थिर रखना समत्व-बोध का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। सुदर्शन पर मिथ्या आरोप लगाए जाते हैं और उसे दण्ड का सामना करना पड़ता है। फिर भी वह राजा के प्रति द्वेष या अपने प्रति हुए व्यवहार को लेकर शोक व्यक्त नहीं करता। वह इस प्रसंग को कर्मफल और संसार में शत्रु-मित्र की अस्थिरता के दृष्टिकोण से देखता है। आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज सुदर्शन के इस विचार को अष्टम सर्ग में प्रस्तुत करते हैं–

"हे नाथ मे नाथ मनागिवकारस्त्वेतस्युतैकान्ततया विचारः।
शत्रुश्च मित्रं च न कोऽपि लोके हृष्यजनोऽज्ञो निपतेच्च शोके[12]॥"

---

[11]सुदर्शनोदय महाकाव्य, 8/19
[12]सुदर्शनोदय महाकाव्य, 4/15

©Indira Gandhi National Open University

इस प्रसंग में सुदर्शन की मानसिक स्थिरता और समभाव का परिचय मिलता है। वह संसार में किसी को स्थायी शत्रु या मित्र नहीं मानता। उसके विचार में अज्ञान के कारण ही मनुष्य कभी हर्ष और कभी शोक में पड़ता है। इस प्रकार सुदर्शन का आचरण विपरीत परिस्थितियों में भी आत्मसंयम बनाए रखने की प्रेरणा देता है।अनासक्ति का सम्बन्ध सांसारिक विषयों के प्रति बढ़ती हुई इच्छा और तृष्णा से भी है। मनुष्य बाह्य वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा में ही दुःख का अनुभव करता है। इस भाव को व्यक्त करते हुए ग्रन्थकार नवम सर्ग में लिखते हैं–

"बाह्यवस्तुनि या वाञ्छा सैषा पीडाऽस्ति वस्तुतः।
सम्पद्यते स्वयं जन्तोस्तन्निवृत्तो सुखस्थितिः[13]॥"

इस पद्य में बाह्य वस्तुओं के प्रति इच्छा को ही वास्तविक पीड़ा बताया गया है। ग्रन्थकार के अनुसार, इच्छा की निवृत्ति होने पर जीव को स्वतः सुखमय स्थिति प्राप्त होती है। इस प्रकार सांसारिक विषयों के प्रति बढ़ती हुई तृष्णा दुःख का कारण बनती है, जबकि इच्छा से मुक्त होना सुख की प्राप्ति का मार्ग है। सुदर्शनोदय महाकाव्य में अनासक्ति का सम्बन्ध मन की इसी अवस्था से है, जिसमें व्यक्ति बाह्य वस्तुओं के प्रति इच्छा और मोह से मुक्त होकर आन्तरिक सुख की ओर उन्मुख होता है।सुदर्शन का जीवन इस भाव को समझने में सहायक है। गृहस्थ जीवन में आने वाली कठिनाइयों के बीच भी वह आत्मसंयम बनाए रखता है। आगे चलकर सुदर्शन की साधना वैराग्य की दिशा में बढ़ती है। वह समझता है कि आत्मकल्याण के लिए बाहरी परिस्थितियों से अधिक अपने आन्तरिक दोषों पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। इस भाव को व्यक्त करते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं -

"वस्तुतस्तु मदमात्सर्याद्याः शत्रवोऽङ्गि न इति प्रतिपाद्याः।
तज्जयाय मतिमान् धृतयुक्तिरिस्तु सैव खलु सम्प्रति मुक्तिः[14]॥"

इस पद्य में मद, मात्सर्य आदि आन्तरिक विकारों को जीव का वास्तविक शत्रु बताया गया है। ग्रन्थकार के अनुसार, बुद्धिमान् व्यक्ति को धैर्यपूर्वक इन विकारों पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार सुदर्शन के चरित्र के माध्यम से आत्मसंयम, आन्तरिक दोषों से मुक्ति और आत्मकल्याण की भावना सामने आती है। जैन दर्शन की दृष्टि से यह विचार वैराग्य तथा मुक्ति के मार्ग को समझने में सहायक है।

समत्व और अनासक्ति का सम्बन्ध साधना तथा कर्मनिर्जरा से भी है। जब व्यक्ति सुख-दुःख में समभाव बनाए रखता है और सांसारिक विषयों के प्रति मोह से दूर रहता है, तब उसकी साधना

[13]सुदर्शनोदय महाकाव्य, 8/38
[14]सुदर्शनोदय महाकाव्य, 8/17

Volume 5, Issue 2, 2026, p 100-111, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

अधिक स्थिर होती है। सुदर्शनोदय महाकाव्य में समत्व के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज लिखते हैं–

"यद्वा निशाऽहःस्थितिवद्विपत्ति सम्पत्तियुग्मं च समानमत्ति।
सतां प्रवृत्तिः प्रकृतानुरागा सन्ध्येव बन्ध्येव विभूतिभागात्[15]॥"

इस पद्य में सम्पत्ति और विपत्ति के प्रति समान भाव रखने की भावना अभिव्यक्त हुई है। जिस प्रकार सन्ध्या दिन और रात्रि के मध्य समान लालिमा धारण करती है, उसी प्रकार सज्जन व्यक्ति सुखद और प्रतिकूल परिस्थितियों में समभाव बनाए रखता है। वह सम्पत्ति के प्रति अत्यधिक अनुराग और विपत्ति के प्रति द्वेष का भाव नहीं रखता। इस प्रकार सुदर्शन के जीवन-प्रसंगों के माध्यम से समत्व-बोध और आत्मसंयम की महत्ता स्पष्ट होती है। जैन दर्शन की दृष्टि से यह समभाव राग-द्वेष से दूर रहने तथा आत्मकल्याण की दिशा में आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

4. केवलज्ञान का उपस्थापन

सुदर्शनोदय महाकाव्य में केवलज्ञान को आत्मा की उच्च आध्यात्मिक अवस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जैन दर्शन के अनुसार ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय–ये चार घातिया कर्म आत्मा के स्वाभाविक गुणों को आवृत करते हैं। इन कर्मों का पूर्ण क्षय होने पर आत्मा में केवलज्ञान प्रकट होता है। सुदर्शन की साधना भी इसी अवस्था की ओर अग्रसर होती है। नवम सर्ग में व्यन्तरी द्वारा उत्पन्न उपसर्ग के समय सुदर्शन की आत्मचिन्तन में एकाग्रता और देहासक्ति के त्याग का वर्णन मिलता है–

"त्यक्त्वा देहगतस्नेहमात्मन्येकान्ततो रतः।
बभूवास्य ततो नाशमगू रागादयः क्रमात्[16]॥"

अर्थात्व्यन्तरी द्वारा उत्पन्न उपसर्ग के समय सुदर्शन मुनि देह के प्रति स्नेह छोड़कर एकाग्रचित्त से आत्मा में लीन हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप उनके अवशिष्ट रागादि भाव क्रमशः नष्ट हो जाते हैं। उपसर्ग-दशा में वे क्षपक-श्रेणी पर आरूढ़ होकर मोह आदि घातिया कर्मों का क्षय कर देते हैं। यह प्रसंग आत्मचिन्तन, देहासक्ति के त्याग और कर्मक्षय की प्रक्रिया को स्पष्ट करता है।

घातिया कर्मों के क्षय के फलस्वरूप आत्मा की पूर्ण निर्मलता और केवलज्ञान की प्राप्ति का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार आगे लिखते हैं–

[15]सुदर्शनोदय महाकाव्य, 8/20
[16]सुदर्शनोदय महाकाव्य, 9/84

©Indira Gandhi National Open University

"निःशेषतो मले नष्टे नैर्मल्यमधिगच्छति।
आदर्श इव तस्यात्मन्यखिलं बिम्बितं जगत्[17]॥"

इस पद्य से विहित है कि भाव-मल के पूर्णतः नष्ट हो जाने पर सुदर्शन परम निर्मलता को प्राप्त होते हैं और केवलज्ञान प्रकट होता है। उनकी आत्मा में दर्पण के समान समस्त जगत् प्रतिबिम्बित होने लगता है। इस प्रकार कवि ने केवलज्ञान को आत्मा की पूर्ण निर्मलता तथा समस्त जगत् के यथार्थ ज्ञान की अवस्था के रूप में प्रस्तुत किया है। जैन दर्शन में केवलज्ञान आत्मा का स्वाभाविक गुण है, जो ज्ञानावरणीय आदि घातिया कर्मों के पूर्ण क्षय होने पर प्रकट होता है।केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् मोक्ष की अवस्था का वर्णन करते हुए आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज आगे लिखते हैं–

"नदीपो गुणरत्नानां जगतामेकदीपकः।
स्तुताज्जनतयाऽधीतः स निरञ्जनतामधात्[18]॥"

यहाँसुदर्शन को गुणरूपी रत्नों का भण्डार तथा तीनों लोकों का प्रकाशक बताया गया है। वे शेष चार अघातिया कर्मों का भी क्षय करके मोक्ष प्राप्त करते हैं। जैन दर्शन में आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म अघातिया कर्म कहलाते हैं। घातिया कर्मों का क्षय होने पर केवलज्ञान प्रकट होता है, जबकि शेष अघातिया कर्मों के क्षय के साथ जीव देह से पूर्णतः मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है।

5. मोक्षकीअवधारणा

जैन दर्शन में मोक्ष परम पुरुषार्थ है। इसका अर्थ आत्मा का समस्त कर्मबन्धन से पूर्णतः मुक्त होना है।*सुदर्शनोदय महाकाव्य*में मोक्ष के प्रकरण को सुदर्शन की आध्यात्मिक साधना तथा संसार से विरक्ति के माध्यम से समझा जा सकता है। नवम सर्ग में महाकाव्यकार ने आत्मसंयम, सांसारिक प्रवृत्तियों से विरक्ति और परमात्मा में चित्त लगाने के महत्त्व को स्पष्ट किया है –

"मनोऽपि यस्य नो जातु संसारोचितवर्त्मनि।
समयं सोऽभिसन्दध्यात्परमं परमात्मनि[19]॥६८॥"

---

[17] *सुदर्शनोदय महाकाव्य, 9/85*

[18] *सुदर्शनोदय महाकाव्य, 9/86*

[19] *सुदर्शनोदय महाकाव्य, 9/68*

Volume 5, Issue 2, 2026, p 100-111, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

अर्थात् जिस मनुष्य का मन संसार के मार्ग में नहीं लगता, वह अपना समय परमात्मा के चिन्तन में लगाता है। यहाँ सांसारिक विषयों से विरक्ति और परमात्मा में चित्त की एकाग्रता को आध्यात्मिक उन्नति के लिए महत्त्वपूर्ण माना गया है। यह विचार सुदर्शन की साधना और मोक्षमार्ग की तैयारी को समझने में सहायक है।आत्मसंयम तथा आचरण की शुद्धता के महत्त्व को आगे स्पष्ट करते हुए आचार्यज्ञानसागर लिखते हैं –

"अनुद्दिष्टां चरेद् भुक्तिं यावन्मुक्तिं न सम्भजेत्।
स्वाचारसिद्धये यस्य न चित्तं लोकवर्त्मनि[20]॥"

इस पद्य में ऐसे संयमी व्यक्ति की चर्चा की गई है, जो अपने आचरण की सिद्धि के लिए लोक-व्यवहार में चित्त नहीं लगाता अपितु अपने संयम का पालन करता है। आचार्यज्ञानसागर इसे जितेन्द्रियता की ग्यारहवीं सीढ़ी के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आध्यात्मिक साधना में आत्मसंयम, आचरण की शुद्धता और सांसारिक प्रवृत्तियों से विरक्ति का विशेष महत्त्व है।

उपसंहार

सुदर्शनोदयमहाकाव्यकासमग्रदार्शनिकविवेचनयहस्पष्टकरताहैकियहमहाकाव्यमात्रएककथात्मक अथवाअलङ्कारप्रधानमहाकाव्यनहींहै, अपितुजैनदर्शनकेप्रमुखसिद्धान्तों–आत्मतत्त्व, कर्म-सिद्धान्त, अहिंसा, वीतरागता, समत्व, केवलज्ञानएवंमोक्ष–काभीसशक्तप्रतिपादनकरतीहै।आचार्यज्ञानसागरनेसुदर्शनकेचरित्रकेमाध्यमसे यहस्पष्टकियाहैकिदर्शनकेवलग्रन्थोंमेंवर्णितसैद्धान्तिकविचारनहीं, वरन्जीवनमेंआचरणऔरसाधनाद्वाराप्राप्तकियाजानेवालाआध्यात्मिकअनुभवहै। इस महाकाव्यमेंसुदर्शनकीजीवन-यात्राकेमाध्यमसेआत्मबोध, कर्मबन्धन, आत्मसंयम, अनासक्तिऔरआत्मशुद्धिकेविभिन्नपक्षोंकोभलीभाँतिजानने-समझनेकाअवसरमिलताहै।जैनदर्शनके अनुसारजीवअपनेकर्मोंकेकारणसंसारमेंपरिभ्रमणकरताहैतथासम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानऔरसम्यक्चरित्रकेमाध्यमसेकर्मोंसेमुक्तहोनेकीदिशामेंअग्रसरहोताहै।सुदर्शनकेचरित्रमेंस म्पत्तिऔरविपत्तिकेप्रतिसमानभावरखनेकाआदर्शभीदिखाईदेताहै।आचार्यज्ञानसागरनेइसभावको "समानबुद्धिम्"पद्यांशकेमाध्यमसेअभिव्यक्तकियाहै।इसीप्रकारआत्मशुद्धिकीअवस्थाकावर्णनकरते हुए "नैर्मल्यमधिगच्छति"पद्यांशआत्माकीनिर्मलताकोरेखाङ्कितकरताहै।

इसप्रकारसुदर्शनोदयमहाकाव्यसाहित्यऔरदर्शनकासमन्वितरूपप्रस्तुतकरताहै।इसकीदार्शनिकवि शेषतायहहैकिइसमेंजैनसिद्धान्तोंकोकेवलउपदेशकेरूपमेंनरखकरचरित्रऔरजीवन-प्रसङ्गोंकेमा

[20] *सुदर्शनोदय महाकाव्य, 9/69*

©Indira Gandhi National Open University

ध्यमसेप्रस्तुतकियागयाहै।सुदर्शनकाजीवनआत्मसंयम, वैराग्य, समत्वऔरआत्मकल्याणकीप्रेरणादेताहै।अन्ततःयहमहाकाव्यइसतथ्यकोस्पष्टकरताहैकिबाह्यवैभव कीअपेक्षाआत्मिकशुद्धि,
इच्छाओंपरनियन्त्रणतथाकर्मबन्धनसेमुक्तिहीजीवनकेवास्तविकआध्यात्मिकलक्ष्यहैं।इसदृष्टिसेसुद र्शनोदयमहाकाव्यजैनदर्शनकेमूलसिद्धान्तोंकोसाहित्यकेमाध्यमसेसमझनेऔरआत्मसात्करनेकीप्रेर णादेनेवालीएकमहत्त्वपूर्णएवं महनीय महाकाव्यहै।

*****

Volume 5, Issue 2, 2026, p 100-111, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University